©2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज में व्याप्त सती प्रथा

Dr. Sandeep Kumar Yadav
Village/Post- Malipur,
Dist- Ambedkar Nagar, (U.P) 224159

प्राचीन भारत में पति की मृत्यु के बाद विधवा स्त्री द्वारा पति का अनुगमन करने के उद्देश्य से स्वदाह करने की प्रथा की प्राचीनता के विषय में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। सतीप्रथा का ऐतिहासिक स्रोत सर्वप्रथम महाभारत में मिलता है, जिसमें महत्त्वपूर्ण उदाहरण माद्री का है। आदि पर्व के अध्ययन से स्पष्ट होता है श्रापपीड़ित[1] पाण्डु के अपनी पत्नी के साथ कामरत होने पर[2] जब उनकी मृत्यु हुई[3] तो चितारोहण करने के लिए उन दोनों विधवाओं में होड़ लग गई। कुन्ती स्वयं बड़ी होकर अपने को धर्मानुसार पति के साथ मरने एवं पति लोक में साथ निभाने के धर्मफल की अधिकारिणी बताती है। इसलिए अपने अवयस्क पुत्रों का भरण–पोषण का भार माद्री पर छोड़कर स्वयं पति का अनुसरण करना चाहती है।[4] किन्तु माद्री का तर्क इतना प्रबल था कि उसके आगे कुन्ती को ही अपने निश्चय से विचलित होकर बच्चों की देखरेख करनी पड़ी, क्योंकि अतृप्तकामा माद्री संभोग में अतृप्त पति की कामेच्छा को संतुष्ट करने हेतु यमसदन तक अनुगमन चाहती थी।[5] पुनः अपने पुत्रों के साथ कुन्ती के पुत्रों को भी वह समान प्यार से पाल पायेगी इस पर भी उसे स्वयं संदेह था।[6] पति द्वारा कामना किये जाने के कारण वह स्वयं को ही उनके अनुगमन हेतु उपयुक्त बताती है।[7] इसलिए वह अपनी ज्येष्ठ सपत्नी कुन्ती से अनुरोध करती है कि वह उसे राजा के शरीर से ढक कर अग्नि संस्कृति कर दे। ऐसा कहकर वह चिंताग्नि में प्रविष्ट हो जाती है।[8]

यदि भारतीय उपमहाद्वीप में इस प्रथा के प्रचलन को देखा जाय तो सर्वप्रथम पुरातात्त्विक साक्ष्यों का आलम्बन समीचीन होगा। इनमें युगल शवाधान सबसे महत्त्वपूर्ण है। प्राचीनता की दृष्टि से महदहा, सरायनहरराय, दमदमा एवं लोथल के युगल शवाधान विशेष उल्लेखनीय हैं।

भारतीय इतिहास में सतीप्रथा के अभिलेखीय प्रमाणों में एरण अभिलेख के साक्ष्य को प्रथम स्थान प्रदान किया गया है। गुप्त संवत् 191 (510 ई0) के एरण अभिलेख में वर्णित गोपराज जिसे माधवराज का पुत्र और शरभराह दौहित्र कहा गया है, ने भानुगुप्त की सामरिक मदद की और युद्ध में मारा गया तथा उसकी विधवा पत्नी ने भी पति की चिता पर आत्मदाह कर लिया।[9] स्थानीय जनता आज भी इस स्मारक की पूजा सती स्मारक के रूप में करती है।[10] शूद्रक ने मृच्छकटिकम् (जिसकी रचना 500 ई0 माना जाता है) के दशवें अंक में चारूदत्त की पत्नी (आर्याधूता पति के मृत्युदण्ड की बात सुनकर) के अग्नि में प्रवेश करने का वर्णन किया है।[11] जिसमें रानी के साथ उसकी सेविका व पुत्र रोहसेन तथा सेवक भी की अग्नि प्रवेश की इच्छा करते हैं।

बाणभट्ट ने स्वकालीन समाज में विधवादाह प्रथा की ओर संकेत किया है। कादम्बरी में महाश्वेता अपने प्रेमी पुण्डरीक के मरने पर उसका अनुगमन न कर पाने के कारण अत्यंत आत्मग्लानि का अनुभव करती है। महाश्वेता अपने आप को पापिनी, शुभलक्षण रहित, निर्लज्ज, कठिन प्रवृत्ति वाली, स्नेहरहिता, नृशंस, निंदनीय, प्रयोजनरहित उत्पन्न हुई, निष्फल जीनधारिणी, अनाथ, निराधार और दुःखी बताती है।[12] इसी दुःख और निन्दा से बचने के लिए यशोमती स्वयं अपने पति का मरण निश्चित जानकर, जीवित पति के होते हुए भी अपने पति प्रभाकर वर्धन की जीवितावस्था में पुत्र एवं परिजनों द्वारा रोके जाने पर भी मरण निश्चय कर, सरस्वती नदी के किनारे अग्नि में प्रवेश कर गई थी।[13]

राजश्री भी अपने पति ग्रहवर्मा के मारे जाने पर अवसर मिलने पर विंध्याटवी के वनों में अनुमरण का यत्न करती है। यही नहीं बाणभट्ट ने अपनी आलंकारिक शैली में उपमान साधन में अनुमरण प्रसंगों की बार–बार कल्पना की है, जो इस प्रथा के प्रचलन का संकेत करता है। हर्ष द्वारा रचित नाटक प्रियदर्शिका में विंध्यकेतु की विधवाओं के अनुमरण का उल्लेख है।[14] नागानन्द में भी सहमरणोद्यत जीमूतवाहन की विधवा मलयवती के भावोद्रेक का वर्णन है।[15]

10वीं से 12वीं शताब्दी के बीच उत्तर भारत की वीर क्षत्रिय और लड़ाकू जातियों की ही नहीं अपितु निम्न वर्ग की विधवा स्त्रियों ने भी पति का सहगमन किया।[16] यद्यपि शूद्र वर्ग में विधवाओं द्वारा सती होने के उदाहरणों का अभाव दिखता है, क्योंकि उनमें पुनर्विवाह की

सामान्य रूप से मान्यता थी। इस काल में क्षत्रिय वर्ग में सती होने की घटनाओं का बाहुल्य मिलता है। सोमदेव ने कथासरित्सागर की कतिपय कहानियों में विधवा स्त्री के चितारोहण का उल्लेख किया है। इनमें अयोध्या के वणिक पुत्री रत्नवती द्वारा मनोवृत वर (चोर) का अनुगमन करना[17] और कौसलाधिपति की पतिव्रता नारी अरून्धती के पूर्वजन्म में अपने ब्राह्मण पति देवदास के साथ अनुमरण का[18] दृष्टान्त महत्त्वपूर्ण है।

अलबरूनी[19] और सुलेमान के विवरणों से इस कृत्य के प्रचलन का समर्थन प्राप्त होता है। ब्राह्मणी विधवाओं के पति के शव के साथ जलने का भी समर्थन किया जाने लगा था।[20] विवेचित काल में विधवा स्त्रियों द्वारा पति का अनुगमन करने के पीछे स्त्री का पतिव्रत आदर्श महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने लगा था। पति को देवता तुल्य मानने की विचारधारा ने इसे और पुष्ट किया।

इस काल के अभिलेखिक प्रमाणों से जिन विधवाओं के अपने पतियों के अनुगमन के प्रमाण मिलते हैं, उनमें राणुक की पत्नी सांवल देवी (वि0संवत् 947 घटियाला अभिलेख)[21], ठाकुर गुहिल की सती (पुष्कर अभिलेख)[22], धोलपुर के चण्डमहासेन की माँ सती कणहुल्ला[23], राणा मोतीश्वर की पत्नी सती मोहिली राजी[24], मांगलिया शव सीहो की पत्नी सती हम्मीर देवी आदि का नाम लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त संवत् 1244 के पात्र अभिलेखों और चरलू के शिलास्तम्भों में भी अनुगमन करने वाली विधवा स्त्रियों का उल्लेख प्राप्त है।[25]

नौंवी और दसवीं शताब्दी में इन सती स्त्रियों की यादगार में स्मृति पत्थर स्थापित किए जाने लगे, जो राजस्थान क्षेत्र में बहुतायत में प्राप्त होते हैं, इन्हें देवाली कहा जाता था। विल्सन ने लिखा है कि प्रारंभिक पर्यटकों ने दक्षिण में सामूहिक चितारोहण की घटना अनेक स्थानों पर देखी थी। उदयपुर में होड़ावर नामक स्थान में मेवाड़ के राजाओं की समाधियों की छतरियाँ बनी हैं। एक लिंग जी के आकर की मूर्तियाँ समाधिकेन्द्र में स्थापित की गई हैं। जिस समय सतीप्रथा प्रचलित थी उस समय जितनी रानियाँ राजा के साथ सती होती थीं, उतनी ही आकृति (शिवलिंग के पास ही) एक दूसरे पाषाण खण्ड पर बना दी जाती थी।[26]

राजशेखर (लगभग 880–920 ई0) ने उत्तर भारत के राजपूतों में सतीप्रथा के विशेष रूप से प्रचलन का उल्लेख किया है।[27] चेदि राज्य में इस प्रथा के प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं। डाहल के कलचुरि राजा गांगेयदेव की सौ रानियों ने ज्वाला में प्राण परित्याग का संदर्भ महत्त्वपूर्ण है, जबलपुर अभिलेख से भी इसकी पुष्टि होती है।[28] टीकाकार अभयदेव ने उन चालुक्य पुत्रियों के साहस का प्रशंसा की है, जो अपने पति के मरने पर अग्नि में प्रवेश कर जाया करती थीं।[29]

कुछ विशेष परिस्थितियों में सती प्रथा सभी वर्णों की विधवाओं के लिए निषिद्ध थी। यदि विधवा स्त्री गर्भवती हो या अल्पवयस्क शिशु की माँ हो तो समाज उसके आत्मदाह का पक्षधर नहीं था। देवणभट्ट ने इसे एक क्रूर कृत्य कहकर निंदा की है।[30] सोमेश्वर की मृत्यु होने पर पृथ्वीराज तृतीय की माता कर्पूरदेवी अपने बच्चों की देखरेख के लिए जीवित रही। विग्रहराज चतुर्थ की रानी इन्हीं कारणों से आत्मदाह न कर सकी थी। गढ़ (अलवर) की रानी केलच्चदेवी को चिता की अग्नि से सचिवों एवं हितैषियों ने बचा लिया था।[31]

सन् 1081 ई0 में राजा अनन्त देव की चिता में वितस्ता नदी पर पहुँचकर रानी सूर्यमती ने पति की चिता में आत्महुति दी।[32] शंकर वर्मा[33] (883–902 ई0) के मरने के बाद उसकी सुरेन्द्रवती आदि तीन विधवाओं ने कृतज्ञ राजा जयसिंह, कुछ कृतज्ञ राजकर्मचारियों[34], लाड तथा वज्रसार नामक भृत्यों के साथ राजा का अनुगमन किया।[35]

पूर्व मध्यकाल में मालवा, आबू, भिनमताल, जालौर (किराडू) और वागड़ के परमारों के इतिहास में 900 से 1200 ई0 के बीच, कम से कम अभिलेखिक स्रोतों से किसी विधवा रानी के आत्मदाह की घटना का प्रमाण नहीं मिलता।[36] राष्ट्रकूटों का इतिहास सतत् संघर्षों का इतिहास था, इसमें कुछ राजा युद्ध स्थल में असमय मारे गए और कुछ की स्वाभाविक मृत्यु हुई थी, किंतु किसी भी विधवा द्वारा अपने मृत पति के अनुगमन का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।[37]

दक्षिण के चोल राजाओं के इतिहास में विधवा–दाह का प्रचलन छिटपुट प्राप्त होता है। चोलों के अधीन तमिल क्षेत्र में वीर शोल इलंगोवेलार की पत्नी गंगमादेवियार ने पति की मृत्यु पर चितारोहण के पूर्व एक दीपक के लिए अक्षयनिधि दान किया था। यह घटना संभवतः

परान्तक प्रथम के काल की थी।[38] सुन्दरचोल (956–73ई0) की कांचीपुरम् के स्वर्णमहल में मृत्यु के बाद उसकी रानियों में से कम से कम एक ने जिसका नाम वानवन–महादेवी था, जो मलैयमानों के वंश की राजकुमारी थी, सती हुई थी।[39] उसके यशस्वी पुत्र राजराज प्रथम के शासन काल के एक तमिल अभिलेख में, जो तिरूवालंगाडु के ताम्रपत्रों के पूर्व का है, में इस घटना का विस्तार से वर्णन है।[40] उसमें रानी के इस आत्मदाह की प्रशंसा की गई है। इस विधवा रानी की पुत्री कुंदवै तथा तंजौर के मंदिर में इसकी प्रतिमा स्थापित किए जाने का उल्लेख मिलता है।[41] दूसरी विधवा रानी जो चेर राजकुमारी थी, अपने पुत्र राजराज के शासन काल के 16वें वर्ष (1001 ई0) तक जीवित रही। राजेन्द्र चोल की अनेक रानियों का उल्लेख अभिलेखों में किया गया है, उनमें त्रिभुवन महादेवी (बानवन–महादेवियार) मुक्को–विकलान, पंचबनमादेवियार और वीरमादेवी मुख्य हैं। इनमें से वीरमादेवी के राजा की मृत्यु (1044 ई0) के बाद आत्मदाह करने का प्रमाण मिलता है।[42]

कर्नाटक क्षेत्र में विधवा–दाह की तीन घटनाओं का परिचय प्राप्त होता है। इनमें एक का संबंध राजपरिवार से तथा दो का संबंध साधारण परिवार से है। 1057 ई0 में किसी व्यक्ति ने मल्ल प्रतियोगिता में राजा के एक संबंधी को मार डाला, जिसके लिए उसे मृत्युदण्ड मिला। उसकी पत्नी देकब्बे ने, जो नुंगनाड के सरदार की बेटी थी, अपने संबंधियों के तीव्र विरोध के बावजूद अपने मृत पति का अनुगमन किया। इसका करूण विवरण एक कन्नड़ कविता में मिलता है[43] अन्य दो घटनाएँ 1067 और 1068 ई0 की हैं, इसमें एक घटना तथ्यपरक उल्लेख है,[44] जबकि दूसरे लेख में इसका प्रसंगतः उल्लेख आया है। इस लेख में मृत दंपत्ति के पुत्र ने उनकी स्मृति में एक अक्षय निधि की स्थापना की।[45] 1088 मैसूर में एक पिता ने अपने पुत्र और सती होने वाली विधवा पुत्रवधू की स्मृति में दान दिया है।[46] एक अन्य अभिलेख में भी सती प्रथा के बारे में सूचना मिलती है, जिसमें विधवा स्त्री सती होने से रोकने वालों को कोसती है।

इन सभी छिट–पुट प्रमाणों के आधार पर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस काल में दक्षिण भारत में भी विधवा–दाह की प्रथा अज्ञात न थी। कभी–कभी विधवाएँ मृत–पति का अनुगमन करती थीं, किंतु समाज इसका प्रबल पक्षधर न था। इस कृत्य को रोकने का

प्रयास जारी हो गया था। सती–प्रथा की जो घटनाएँ हुईं वे प्रायः राजपरिवारों से संबंधित थीं, जन साधारण में इसका प्रचलन कम था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *आदिपर्व,* 109, पृ0 27–30.
2. *तत्रैव,* 116, पृ0 2–10.
3. *तत्रैव,* 116, पृ0 11–12.
4. *तत्रैव,* 116, पृ0 23–24.
5. *आदिपर्व,* 116, पृ0 25–26.
6. *तत्रैव,* 116, पृ0 27.
7. *तत्रैव,* 116, पृ0 28.
8. *आदिपर्व,* 116, पृ0 29–31, 117, पृ0 28–29, 90, पृ0 75, 118, पृ0 21–22.
9. *एरण का स्तंभ लेख,* गुप्त संवत 191 (510 ई0)।
10. राय, उदय नारायण, *गुप्त सम्राट और उनका काल,* पृ0 724.
11. *मृच्छकटिक,* अंक 10.
12. *कादम्बरी,* पूर्वार्द्ध पृष्ठ 503.
13. *हर्षचरित* पाचवां उच्छवास, पृ0 276.
14. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द्र, *मध्यकालीन भारतीय संस्कृति* (600–1200 ई0) पृ0 56.
15. हर्ष, *नागानन्दम्,* पृ0 146.
16. द्विवेदी, एच0एन0, *ग्वालियर राज्य के अभिलेख,* पृ0 3; गीतागुप्ता, *अभिलेखों के आधार पर परमारों का सांस्कृतिक इतिहास* (शोधप्रबंध) पृ0 164.
17. *कथासरित्सागर* 12, 21, पृ0 34–55, तुलनीय वेंजर, *ओसेन ऑफ स्टोरी,* जिल्द 7 पृष्ठ 38.
18. *कथासरित्सागर,* 27, पृ0 80–102, प्रसाद, एस0 एन0, *कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति,* 1978, पृ0 110.
19. सचाऊ, *अल्बेरूनीज इण्डिया,* जिल्द 2, पृ0 155.

20. *व्यास स्मृति,* 2, पृ0 55; *योगिनीतंत्र* 2, 10, पृ0 302–308; इलियट एवं डगलस, *हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स,* भाग 1, पृ0 6.

21. *इन्सक्रिप्सन्स ऑफ नार्दन इण्डिया,* नं0 107.

22. *तत्रैव,* नं0 407.

23. शर्मा, दशरथ, *चौहान सम्राट पृथ्वीराज तृतीय और उनका युग,* पृ0 56.

24. *इन्सक्रिप्सन्स ऑफ नार्दन इण्डिया,* नं0 423.

25. शर्मा, दशरथ, *अर्ली चौहान डाइनेस्टीज,* पृ0 289–91.

26. सिंह, रघुनाथ, कल्हणकृत *राजतरंगिणी,* भाग 2, पृ0 227, पाद टिप्पणी 2 एवं पृ0 418–19.

27. धनपाल, *तिलकमंजरी,* पृ0 156, राजशेखर के काल निर्णय के लिए द्रष्टव्य, विद्याभवन संस्कृत गद्य माला 12, *कर्पूरमंजरी,* प्रस्तावना, पृ0 10, *एफिग्रैफिका इण्डिका,* जिल्द 2, पृ0 4 श्लोक 12.

28. गुप्ता, गीता, पूर्व निर्दिष्ट, पृ0 164.

29. *स्थानांग0 टीका* 4, पृ0 199.

30. आंगिरस, *स्मृति चंद्रिका* भाग 3, पृ0 994–97.

31. शर्मा, दशरथ, *चौहान सम्राट पृथ्वीराज तृतीय और उनका युग,* पृ0 56.

32. *राजतरंगिणी,* 7, पृ0 478.

33. *तत्रैव,* 5, पृ0 128

34. *तत्रैव,* 5, पृ0 227.

35. गुप्ता, गीता, *अभिलेखों के आधार पर परमारों का सांस्कृतिक इतिहास,* शोध प्रबंध, पृ0 163–64.

36. विस्तृत विवरण के द्रष्टव्य, जी0 याजदानी, *दकन का प्राचीन इतिहास,* पृ0 248–289.

37. शास्त्री, नीलकंठ, *चोलवंश,* पृ0 427–28.

38. *तिरूवालंगाडु ताम्रपत्र,* छंद 65–66.

39. शास्त्री, नीलकंठ, *चोलवंश,* पृ0 428.

40. *साउथ इंडियन इंसक्रिप्सन्स,* 2 पृ0 73.

41. शास्त्री, नीलकंठ, *चोलवंश,* पृ0 179.

42. *एपिग्रैफिआ कर्नाटका,* जिल्द 4, पृ0 100. *एपिग्रैफिआ इंडिका,* जिल्द 6, पृ0 213–19.

43. *एपिग्रैफिआ कर्नाटका,* जिल्द–9, शास्त्री, नीलकंठ, *चोलवंश,* पृ0 428 पर उद्धृत।

44. *एपिग्रैफिआ कर्नाटका,* जिल्द 10, शास्त्री, नीलकंठ, उपर्युक्त।

45. *एपिग्रैफिआ कर्नाटका,* जिल्द 4, पृ0 100.

46. *एनुअल रिपोर्ट आफ एपिग्रैफी मद्रास,* 1907, भाग 2 पृ0 41 विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य, शास्त्री, नीलकंठ, *चोलवंश,* पृ0 428.